:- अध्याय एक -:

-- भारतीय नारी --

(वेदकाल से आज तक)

नारी की उत्पत्ति --

प्राचीन काल में मानव टोली अवस्था में रहता था। बाद में वह खेती संस्कृति में अग्रसर हुआ। आगे उसने जरुरत से ज्यादा उत्पादन करने की कला अवगत की। फलस्वरुप समाज में वर्ग व्यवस्था का उदय हुआ। वर्ग - व्यवस्था के स्थिर होने से पूर्व ही स्त्री-पुरुष के बीच श्रम - विभाजन हुआ और स्त्री को घर में स्थान मिला। संतान की उत्पत्ति की नैसर्गिक प्रक्रिया से ही उसे मानवी समाज की प्राथमिक अवस्था में स्वामिनीपद या रानीपद प्राप्त हुआ। ("नारी जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत आदि ग्रंथों में 'कस्य कायमभूद् द्वेधा' इस प्रकार का ऐतिहासिक वर्णन मिलता है। भगवान ने सबसे पहले मनु की सृष्टि की, उसके शरीर का दक्षिण भाग स्वायम्भुवमनुरुपी पुरुष बना और वाम भाग शतरुपा नाम की स्त्री बनी। इससे स्पष्ट है कि हमारे शास्त्रों के अनुसार भी स्त्री और पुरुष दोनों मिल कर एक शरीर होता है। स्त्री अर्धांगिनी है, इसलिए भगवान शंकर अर्धनारीश्वर है।" [१]

वेदकाल से तात्पर्य --

वेदकाल से आज तक की नारी की स्थिति का अध्ययन करते समय, पहले वेदकाल कब से माना जाता है, वेदकाल से पहले नारी की स्थिति किस प्रकार

---

१ कल्याण शक्ति उपासना विशेषांक - १९८७ - पृ.६५

की थी, आदि बातों को देखना आवश्यक होगा। पुराण ग्रंथों में महाभारत काल के पूर्व लगभग सौ पीढियों का वर्णन मिलता है।

`वेदकाल` शब्द किसी भी नए या पुराने संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध नहीं है। पाश्चात्य संस्कृत पण्डितों ने जिसे `वैदिक पीरिअड` नाम से अभिहित किया है, उसका हिंदी रुपांतर `वेदकाल` है। विद्वानों के मतानुसार इस काल की निर्धारित सीमा ई.स.पूर्व ५०० वर्ष है, अर्थात् ई.स. पूर्व ५०० वर्ष के पूर्ववर्ती कालखंड को वेदकाल माना जाता है। महाभारत काल से पूर्व वैवस्वत मनु से लेकर धर्मराज तक के सौ पीढियों के विस्तृत कालखंडको नौ भागों में विभाजित किया गया है।

१. वैवस्वत मनु से ययाति तक	- ८ पीढियाँ
२. ययाति से जह्नु तक	- १६ पीढियाँ
३. जह्नु से त्रिशंकु तक	- १० ,,
४. त्रिशंकु से भरत तक	- १० ,,
५. भरत से हस्तिन तक	- ९ ,,
६. हस्तिन से राम तक	- १५ ,,
७. राम से कुरु तक	- ६ ,,
८. कुरु से प्रतीप तक	- १६ ,,
९. प्रतीप से धर्मराज तक	- १० पीढियाँ.

कुल मिलाकर	-१०० पीढियाँ।

वेदपूर्व काल --

इसमें से पहले तीन कालखंडो के बीतने तक ऋग्वेद रचना का आरम्भ नहीं हुआ था। कहा जाता है, कि गायत्री `ऋग्वेद का आद्य मंत्र है, जिसके रचयिता विश्वामित्र का आविर्भाव त्रिशंकु के समय माना जाता है। अत: इन

पहले तीन कालखण्डों को वेदपूर्व काल कहना उचित होगा । चौथे कालखण्ड से आगे वेदकाल का आरम्भ होता है ।

वैवस्वत मनु से लेकर ययाति तक के पहले कालखण्ड में इला, उर्वशी, दानवी, विरजा, जयन्ती, देवयानी, शर्मिष्ठा और गौ आदि आठ प्रसिध्द नारियों का आविर्भाव हुआ । पुराणेतिहास से ज्ञात होनेवाली ' इला ' पहली नारी है। ऋग्वेद सूक्त के अनुसार यह ज्ञात होता है, कि इस काल में लडकी को पिता की सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलता था । (ऋग्वेद खिल सूक्त ३३-१९) इस काल में गांधर्व विवाह प्रथा का उदय हुआ । बाद में स्त्री का जबर्दस्ती से हरण कर उसके साथ विवाह की प्रथा अस्तित्व में आई । इस काल में स्त्री विद्यार्जन कर सकती थी और जीवन साथी का चुनाव भी खुद कर सकती थी । ययाति के काल से एक ही समय दो नारियों से विवाह की प्रथा का आरम्भ हुआ । दूसरे कालखंड में नारी का स्वातंत्र्य नष्ट हुआ । उसे पिता की सम्पत्ति माना जाने लगा । लडकी के जीवन साथी का चुनाव पिता करने लगा । और धीरे धीरे ' कन्यादान ' शब्द रुढ हुआ । तीसरे कालखंड तक आते - आते स्त्री अधिकाधिक बन्धन में जकडी जाने लगी । कुछ धन देकर स्त्री से विवाह करने की प्रथा प्रचलित हुई ।

वेदकाल --

चौथे कालखंड से वेदकाल का आरम्भ होता है। चौथे और पाँचवें काल - खण्ड में पति के मरने के बाद नारी को मृतप्राय समझा जाने लगा । इसलिए स्त्रियाँ अपने मृत पति के साथ सती जाने लगीं और यहीं से सती प्रथा का आरम्भ हुआ । बाद में पुनर्विवाह की प्रथा भी शुरु हुई । इस काल में विवाह के सभी प्रकार प्रचलित थे। इस काल में उचथ्य ऋषि की पत्नी ममता के पुनर्विवाह से स्त्री को थोडा स्वातंत्र्य मिला , जिससे जिस स्त्री को अपने पति द्वारा संतति प्राप्त नहीं होती थी, वह किसी दूसरे पुरुष से नियोगविधि द्वारा संतति प्राप्त करने लगी । इससे स्त्री- पुरुष के नैतिक सम्बन्धों में थोडी ढील आ गई । १

इस काल के अन्त में स्वयंवर प्रथा भी प्रचलित हुई। उसके साथ बहुपत्नी विवाह प्रथा का भी उदय हुआ। इस कालखण्ड में स्त्री का जीवन विवाह और संतति संवर्धन तक ही सीमित रहा, परन्तु छठे कालखण्ड तक आते-आते स्त्री भी अपने पति के साथ यज्ञकर्म में भाग लेने लगी, सूक्तों की रचना करने लगी। आज विवाहित स्त्री अपने नाम से पहले जो सौ. शब्द लगाती है, वह शब्द 'विश्ववारा' के सूक्त में प्रयुक्त 'सौभग' शब्द से उत्पन्न हुआ है। इस कालखण्ड के अन्त में स्वयंवर प्रथा बन्द हो गई। इसके बाद का सातवाँ और आठवाँ काल-खंड महत्त्वहीन रहा। इस कालखंड में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद की संहिताएँ तैयार हुई। परन्तु अन्य कोई महत्वपूर्ण घटना घटित नहीं हुई। इस कालखंड के अन्त में अग्निवर्ण नाम के राजाके कालवश होने के बाद उसकी विधवा पत्नी सिंहासनाधिष्ठित हुई। राज्यशकट चलानेवाली पुराणेतिहास की यह पहली स्त्री है। इसके पहले और बाद में भी वेदकाल के अन्त तक राज्य का भार संभालने वाली कोई भी स्त्री नहीं हुई। यह इस कालखण्ड की महत्वपूर्ण घटना है। वेदकाल के अंतिम कालखंड में तेजस्वी और शक्तिशाली नारियों की उत्पत्ति हुई। गंगा, सत्यवती, अंबा, अंबिका, अंबालिका, गांधारी, कुंती, माद्री, राधा, द्रौपदी आदि इस काल की प्रख्यात नारियाँ हैं।

वेदकाल की विश्ववारा, घोष्या, लोपामुद्रा आदि प्रख्यात ब्रह्मवादिनी नारियों ने ऋग्वेद के मंत्रों की रचना की। राजा अंग की रानी सास्वति प्रसिध्द दार्शनिक थी। अपाला और इंद्र की पत्नी इंद्राणी भी प्रसिध्द मंत्र द्रष्ट्री थीं। इस काल में स्त्री और पुरुष दोनों का अपने घर तथा परिवार पर पूरा अधिकार था। पुरुषों के सभी संस्कार स्त्रियाँ कर सकती थी। वे पति के साथ स्वतंत्र रुप में उपासना भी कर सक्ती थी। परंतु इस काल में ही नारियों की स्थिति में ह्रासोन्मुखता का प्रारंभ हुआ। परिवार के प्रबंध में उसकी पति के साथ होनेवाली साझेदारी समाप्त होने लगी। विधवाओं को हेय समझा जाने लगा। नारी में ललित कलाओं को सीखने की जो उत्कंठा वैदिक काल में थी वह कालान्तर में समाप्त हो गई। प्राचीन काल में

परिवार
बहुविवाहों की प्रथा से ही मातृमूलक परम्परा का उदय हुआ। नारियों की
परिवार
गणना संपत्ति के रुप में होने लगी। मातृमूलक परम्परा में पुत्रों का नामकरण
भी माता के नाम पर ही होने लगा, जैसे, सौमित्र, कौंतेय आदि। महाभारत
परिवार
काल तक आते आते मातृमूलक परम्परा समाप्त हो गई और परिवार में माता के
स्थान पर पिता का प्रभुत्व फैलने लगा। सगोत्र विवाह की प्रथा समाप्त हो कर
विभिन्न गोत्रों में विवाह का प्रचलन शुरु हुआ। इसी समय बहु विवाह प्रथा
का भी प्रारंभ हुआ।

सूत्र काल और स्मृति काल --

ई.स.पूर्व ४०० से ई.स.४०० तक का यह कालखण्ड वैदिक वाङ्मय के बाद का काल माना जाता है। इस काल में ही गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और अन्य धर्मशास्त्रों की भी रचना हुई। इस काल के प्रारम्भ में कौटिल्य का `अर्थशास्त्र` और उसके बाद वात्स्यायन का `कामसूत्र` आदि ग्रंथों की रचना हुई। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ आज जिस स्वरुप में उपलब्ध हैं, वह स्वरुप उन्हें इस काल में ही प्राप्त हुआ होगा।

वेदकाल में पुरुषों के समान स्त्रियों के भी आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार हुआ करते थे। बाद में स्त्रियाँ विवाह की कालावधि तक पुरुषों के साथ ७-८ वर्ष तक विद्यार्जन कर सकती थी। तथा उनका विवाह १६ वे वर्ष में हुआ करता था। परंतु इस काल तक आते-आते विवाह की कालावधि घटने लगी। स्त्री शिक्षा का दृष्टिकोण संकुचित होने लगा। हारीत नाम के धर्मशास्त्र रचयिता ने इस काल की दो प्रकार की नारियों का उल्लेख किया है -- एक `ब्रह्मवादिनी` और दूसरी `सद्योवधू` याने जिसका कम उम्र में विवाह होता है वह स्त्री। इस दूसरे प्रकार की नारियों के शिक्षा की कालावधि कम होने लगी। धीरे-धीरे उनके उपनयन संस्कार भी बन्द होने लगे। मनु ने तो यहाँ तक

कहा है, कि स्त्री के सभी संस्कार विवाह संस्कार में अंतर्भूत होते हैं, उनके लिए विवाह ही एक वैदिक संस्कार है। बाद में लडकी का विवाह १२-१३ वे साल में होने लगा । ८वी ९वी शताब्दी के बाद तो ८-९ वे साल में लडकी का विवाह होने लगा। उनका वेदाध्ययन का अधिकार छीन लिया गया। इस काल के अन्त तक केवल उच्च वर्ग की स्त्रियाँ ही विविध कलाओं का अध्ययन कर सकती थी। इस काल में आठ विवाह प्रकार प्रचलित थे - पैशाच विवाह, राक्षस विवाह, आसुर विवाह, गांधर्व विवाह या प्रेम विवाह, आर्ष विवाह, दैव विवाह, ब्राह्म विवाह, प्राजापत्य विवाह आदि। इस काल तक आते-आते सगोत्र विवाह बंद हो गया। दसवीं शती तक मिश्रवर्णीय विवाह ग्राह्य माना गया था , परंतु दसवीं शती से आगे मिश्रवर्णीय विवाह निषेधार्ह माना गया। आगे बालविवाह प्रथा प्रचलित हो गई। इ.स.३००-४०० के पूर्व स्त्री को विवाह विच्छेद करने के लिए इजाजत मिलती थी, परंतु कालान्तर में यह अधिकार छीन लिया गया।

कहा जाता है कि आर्यों के हिंदुस्थान में आने से पहले इंडोयूरोपीय काल में उनमें सतीकी प्रथा प्रचलित थी। परंतु आर्योंके हिंदुस्थान में आने के बाद उनके प्रारम्भिक साहित्य में कहीं भी सती प्रथा का उल्लेख नहीं है। इससे हिंदुस्थान में प्रवेश करते समय आर्यों में सती प्रथा बन्द हुई होगी, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। ऋग्वेद में (१८-२-१) एक जगह इस तरह उल्लेख मिलता है, कि पति के शव के पास स्त्री कुछ काल तक पडी रहती है और बाद में उसे नीचे बुलाया जाता है। यह प्राचीन सती प्रथा का स्मरणरुप अवशेष ही मानना उचित होगा। ब्राह्मण ग्रंथ और गृह्यसूत्र में भी इस प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता है। सती प्रथा का सबसे पहला उल्लेख महाभारत में मिलता है। पंडुराजा के साथ उसकी दूसरी पत्नी माद्री सती हुई थी। मौसल पर्व में दिखाया गया है, कि वसुदेव की चारों पत्नियाँ सती हुई थी। श्रीकृष्ण की मृत्यु की वार्ता सुनकर उसकी पत्नियों में से सिर्फ पाँच पत्नियाँ सती हुई थीं। महाभारत में उल्लिखित उदाहरणों से यह दिखाई देता है, कि पति की मृत्यु के बाद सभी स्त्रियाँ सती नहीं होती थीं। रामायण में केवल वेदवती की माँ के सती जाने का उल्लेख मिलता

है। इ.स.के प्रारम्भ में ३००-४०० वर्ष के कालखंड में सती की प्रथा त्याग का प्रतीक मानी जाती थी। उसके बाद स्मृति ग्रंथों में इस प्रथा का प्रखर विरोध किया गया है। इ.स.७०० के आगे धर्मशास्त्र रचनाकारों ने जोरों पर सती प्रथा का समर्थन किया। फलत: यह दिखाई देता है, कि इ.स.७८० से इ.स.१००० तक के कालखंड में उत्तर हिंदुस्थान में अनेक स्त्रियाँ सती हुई थी। दक्षिण हिंदुस्थान में इ.स.१००० तक कहीं भी सती की प्रथा अस्तित्व में नहीं थी। परंतु इ.स.१००० के बाद दक्षिण में भी इस प्रथा का प्रचलन हुआ।

लगभग इ.स.पूर्व ३०० तक नियोग द्वारा प्रजोत्पादन ग्राह्य माना गया था, परंतु कालान्तर में समाज में इसका विरोध होने लगा। मनु ने तो नियोग पध्दति को पशु धर्म तुल्य माना है। इ.स.६०० के बाद यह प्रथा धीरे-धीरे बन्द होने लगी।

प्राचीन काल में पुनर्विवाह की प्रथा कुछ अंश में प्रचलित थी, परंतु आगे धीरे-धीरे पुनर्विवाह को विरोध होने लगा। उसे हेय माना जाने लगा। बालविधवाओं को कुछ शर्त पर पुनर्विवाह करने के लिए इजाजत दी जाती थी। परन्तु ई.स.१००० से आगे बालविधवाओं के पुनर्विवाह का भी निषेध किया जाने लगा। इ.स.१२०० के आगे पुनर्विवाह प्राय: बन्द हो गए। परंतु आगे अंग्रेजों के सम्पर्क से प्रभावित समाज सुधारकों ने यह प्रथा फिर से शुरु की।

पुराण काल --

पुराणकाल स्थूल रुप से ई.स.पूर्व २०० से ई.स.१३००-१४०० तक माना जाता है। इस कालखंड में पूरे भारत में हिंदु स्त्री-जीवन का स्वरुप प्राय: एक जैसा ही था। परिवार में लडकी का जन्म होना पाप का परिणाम है और लडकी का जन्म परिवार के लिए एक संकट है, यह भावना इस काल में प्रचलित नहीं थी। पुत्र-जन्म और कन्याजन्म समान रुप से मनाया जाता था।

इस काल में स्त्री को घर में ही शिक्षा दी जाती थी। ब्राह्मण काल में स्त्री का उपनयन संस्कार हो सकता था। यज्ञ कर्म में स्त्री प्रत्यक्ष भाग ले

सकती थी। परंतु आगे यह स्थिति नहीं रही। आठवें वर्ष में स्त्री का विवाह होना ही चाहिए, यह नियम स्मृतिकारों ने जारी किया, जिससे स्त्री के उपनयन संस्कार बन्द हो गए और उनके शिक्षा का प्रबंध भी बंद किया गया। इ.स.९०० तक संपन्न और सुसंस्कृत परिवारों में स्त्री को उच्च शिक्षा दी जाती थी। इसमें संगीत, नृत्य आदि कलाओं का समावेश रहता था। पुराण ग्रंथों में सती प्रथा का वर्णन मिलता है, परंतु पुनर्विवाह या विवाहविच्छेद का पुराण ग्रंथों में कहीं भी उल्लेख नहीं है। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण में विवाहविच्छेद अमान्य था, परंतु निचले वर्ग में और जातियों में विवाहविच्छेद प्राचीन काल से ही प्रचलित था। इस काल में स्त्री को वैवाहिक जीवन में बहुत महत्त्व का स्थान था। बहुपत्नीत्व की प्रथा भी इस काल में प्रचलित थी। घर का कारोबार पत्नी के हाथ में था। घर का खर्चा पत्नी ही चलाती थी। अतिथियों का स्वागत करना, अतिथि सेवा करना आदि अधिकार स्त्री को प्राप्त थे। ई.स.१२०० तक उत्तर हिंदुस्थान में सती प्रथा प्रचलित थी। परंतु ई.स.१००० तक दक्षिण में महाराष्ट्र में सती प्रथा प्रचलित नहीं थी। दक्षिण भारत में ई.स.९०० तक सती का एक भी ऐतिहासिक उदाहरण नहीं मिलता है। प्रारम्भ में दत्तक और नियोग प्रथा रुढ थी। ई.स.२०० तक देवर नियोग प्रथा प्रचलित थी। बाद में धीरे-धीरे यह बन्द होने लगी और ई.स.६०० के बाद पूर्ण रुप से बन्द हो गई। ई.स. २०० के बाद पुनर्विवाह की प्रथा धीरे-धीरे बन्द होने लगी।

इस काल में स्त्री अध्यापन का व्यवसाय करती थी। अध्यापन कार्य करनेवाली स्त्री को 'आचार्या' कहा जाता था। वेदान्त, तत्वज्ञान, गायन, नृत्य, चित्रकला आदि विषय पढाए जाते थे। ई.स. की ८वी शती में 'रुपा' नाम की एक हिंदु स्त्री प्रख्यात वैद्य थी। वह प्रसूतिशास्त्र तज्ज्ञ थी। इस काल में अनेक स्त्रियाँ वैद्यक व्यवसाय करती थी। स्त्री के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में पुराणेतिहास में कुछ उल्लेख नहीं मिलता है।

इस काल में स्त्री को सहानुभूति और आदरभाव से देखा जाता था, लेकिन विदेशी हमलों का आरम्भ होने के बाद इस दृष्टिकोण में अन्तर आने लगा।

स्त्री के बाहर के व्यवसाय बन्द हो गए और उसका कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित रह गया। विदेशियोंने जिन स्त्रियों का जबरदस्ती से अपहरण किया था, उनको १२वी शती तक फिर से वैदिक समाज में अंतर्भूत किया जाता था, परंतु १३वी शतीसे स्त्रियों के लिए यह द्वार सदा के लिए बन्द हो गया। परंतु वर्तमान काल की नारी की तुलना में पुराणकाल की नारी अधिक सुखी, आरोग्यपूर्ण, श्रध्दायुक्त थी।

मध्यकाल --

अनेक परिवर्तनों के साथ स्त्री के विवाह की आयु घटकर आठ-नौ वर्ष रह गई, परिणाम स्वरुप स्त्री बचपन से ही घर गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त रहने लगी। स्त्री का कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित रहा। विधवा विवाह बन्द हो गया। स्त्री की आर्थिक दशा में कुछ सुधार हुए। ई.स.१२०० तक विधवाओंका उत्तराधिकार स्वीकृत हो गया।

मुस्लिमों का शासन आने के बाद उच्च वर्गों में भी नारी की शिक्षा समाप्त हो गई और ललित कलाओंका ह्रास होने लगा। अधिकांश नारियाँ स्वतंत्र रुप से जीविकोपार्जन नहीं कर सकती थी। राज परिवारों में स्त्री को सैनिक और शासन संबंधी शिक्षा दी जाती थी। इस काल में कुछ नारियाँ कुशल शासिकाएँ भी थी। मध्यकाल तक आते आते स्त्री के अधिकारों में क्रमशः न्यूनता आती गई और केवल पुरुषोंने ही नहीं, अपितु स्त्रियों ने भी अपनी निम्न स्थिति को स्वीकार किया। सामन्ती समाज में स्त्री-पुरुष का कार्यक्षेत्र अलग-अलग हो गया। स्त्री का कर्तव्य केवल घर का प्रबन्ध और पति को प्रसन्न करनाही रह गया। बौध्द काल में नारी का पतन होने लगा था और मध्यकाल तक उनकी स्थिति और भी दयनीय हो गई। स्त्री-शिक्षा केवल उच्च वर्ग हिंदु समाज तक ही सीमित रही। और मध्य तथा निम्न वर्ग की नारी शिक्षा के अभाव में केवल घर की वस्तु समझी जाने लगी। मुसलमानों में प्रचलित बालविवाह और पर्दे की प्रथा का प्रभाव हिंदुओं पर भी पडा। दहेज की प्रथा भी जोर पकडने लगी। सामंती परिवारों में तो पहले से ही बहु-विवाह का प्रचलन था।

आदर्शवादिता के प्रभाव से हिंदु एक्ही विवाह करते थे और पत्नी के चरित्रहीन होने के अतिरिक्त जीवन-पर्यन्त तलाक नहीं देते थे। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा `तुज्के जहाँगीरी` में लिखा है कि हिंदुओं के सारे शुभ कार्य बिना स्त्री के सम्पन्न नहीं होते, जिनको वे अर्धांगिनी मानते हैं।`

सामन्ती, उच्च तथा मध्य वर्ग की नारियों के प्राय: सभी अधिकार छीन लिए गए थे, लेकिन निम्न वर्ग की नारियाँ पुरुषों के समान कार्य करती थी। उनमें पर्दे की प्रथा नहीं थी और वे परंतत्र भी नहीं थी। मुसलमानों से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए राजपूत नारियाँ जौहर करती थी। रानी पद्मिनी का जौहर इतिहास प्रसिध्द है। हिंदू नारी अपने पति को जीवन पर्यन्त नहीं छोडती थी। इस प्रकार यह दिखाई देता है, कि मध्यकाल में नारी की सीमा घर की चार दीवारों तक सीमित थी। उनका सामाजिक और राजनेतिक अधिकार प्राय: लुप्तप्राय हो गया था।

आधुनिक काल --

आधुनिक काल के व्यक्तिवादी, निरंकुश, यांत्रिक, नवीन चेतना, संत्रास और व्यस्तता भरे वातावरण से पारिवारिक जीवन में बहुत परिवर्तन आया। फलत: नारी की स्थिति में भी परिवर्तन आने लगा। भारतीय संविधान के अनुसार स्त्रियों को पुरुषों के समान सभी अधिकार प्राप्त हुए। शिक्षा क्षेत्र में भी उन्हें आशातीत सफलता मिलने लगी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरुषों के समान भाग लेने लगी। परिवार में भी उसके अधिकारों की वृध्दि हुई। इस संक्रमण काल के संत्रास भरे वातावरण के कारण परिवार विघटन बडी तेजी से होने लगा था। पूँजीवाद के कारण समाज में आर्थिक वैषम्य, निर्धनता, आत्महीनता और असमानता की प्रवृत्तियाँ तेजी से पनप रही थी, जिससे युवक - युवतियों में आत्मकुण्ठा घर करती जा रही थी। स्वतंत्रता और समानता की भावना से नारियाँ स्वच्छंद बनने लगी। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से वे आधुनिका बनने का प्रयास करने लगी। युवतियाँ नवीन जीवन दर्शन के सन्दर्भ ढूँढने लगीं। नवीन

विचारों के प्रभाव से परम्परागत रुढियाँ अपने आप लुप्त होने लगीं।

अंग्रेजों की सत्ता-लोलुप नीति के कारण समाज में अनैतिकता बढने लगी। अंग्रेजों के आगमन से भारतीयों को नवीन जीवन प्रकाश मिला। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, रामतीर्थ आदि विचारकों ने भारतीय जीवन को उदात्त बनाया।[१] स्वामी दयानंद ने पूर्ण शक्ति से नारियों की स्थिति में सुधार लाने और नारी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया।[१] ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज आदि आन्दोलनोंने शिक्षित नारी समाज में पर्याप्त जागृति उत्पन्न की, जिससे उनमें आत्मविश्वास और सजगता की वृध्दि हुई। और वे पुरुषों के समान जीवन के हर क्षेत्र में अग्रसर होने लगीं।

२०वीं शती नव चेतना का सन्देश लेकर अवतीर्ण हुई और नारी शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से बढने लगा। विवाह ही उनके जीवन का परम लक्ष्य नहीं रहा। नव चेतनाने नारी के हृदय में स्थित विद्रोहाग्नि को प्रज्वलित किया। आज नारी घर में रह कर पारिवारिक तथा पारम्पारिक रुढियों के विरुध्द आवाज उठा रही है। और घर से बाहर पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर हर क्षेत्र मेंकार्यरत होने लगी है।

आज लडकियों की शिक्षा के सम्बन्ध में हर राज्य में अलग-अलग स्थिति नजर आती है। केरल पहले क्रमांकपर है, तो उत्तर प्रदेश और राजस्थान सबके पीछे दिखाई देते हैं। बिहार, जम्मू-काश्मीर, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में शिक्षा का प्रसार अत्यावश्यक दिखाई देता है। लडकों की शिक्षा के बारे में लोग सतर्क है, परन्तु लडकियों की शिक्षा के बारे में वे उतने ही बेफिक्र दिखाई देते हैं। लडके और लडकियों की शिक्षा के बीच की खाई मिडिल-स्कूल से ऊपर की ओर बढती हुई दिखाई देती है। आज उच्च शिक्षित नारीपर सामान्य नारी को दिशा निर्देश करने की जिम्मेदारी है।

---

१ हिंदुस्तान की कहानी - जवाहरलाल नेहरु - पृ.३८५

आज की शिक्षा का ढाँचा सौ-डेढ सौ वर्ष पहले अंग्रेजोंने जो बनाया था, वही है। शिक्षा - पध्दति में जो थोडे बहुत परिवर्तन किए जा रहे हैं, वे भी असफल हो रहे हैं। आज भी हमारे देश में नारी को शिक्षा देने का उद्देश्य उसे विवाह योग्य बनाना ही है।

बडे नगरों में स्त्रियों के लिए विविध क्षेत्र खुले हैं, लोग सहयोग दे रहे हैं। पालकों के सुशिक्षित होने से लडकों के साथ लडकियों को भी अपनी इच्छानुसार शिक्षा मिल सकती है, परंतु देहातों में यह स्थिति नहीं है। शहरों में जो स्त्रियाँ कॉलेजों में पढती है, उनमें से अधिकतर स्त्रियाँ कला तथा मानविकी की ओर जाती है। बहुत थोडी संख्या में विज्ञान की ओर जाती है और उससे भी कम वैद्यक, अभियांत्रिकी आदि व्यावसायिक प्राध्यक्रमों की ओर जाती है। शिक्षित स्त्रियों की संख्या बढ रही है, परंतु आज भी उनकी संख्या सागर में कुछ बूँदों के समान ही है। उच्च शिक्षा पध्दति में बुनियादी परिवर्तन आवश्यक है। उद्योग-व्यवसाय में बहुत ही कम स्त्रियोंको अपना आसन स्थिर करने में सफलता मिली है। अभी अभी केवल दो ही समाज-सेवा-प्रशिक्षण-स्कूल स्त्रियों व्दारा चलाए जाते हैं। डॉक्टरी पेशे में आज भी स्त्रियों की कमी महसूस होती है। ड्रॉईंग, पेंटिंग, संगीत आदि कलाओं के क्षेत्र में स्त्रियाँ आगे हैं।

उच्च-वर्ग की नारियाँ सुशिक्षित, सुसंस्कृत और कला कुशल होने से खानदान की शान बढाने का दिखावा करती है। ये नारियाँ विलासी होकर पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करती है। इनमें से ज्यादातर नारियाँ नौकरी नहीं करती है और जो करती हैं, वे मनोरंजन या समय काटने के लिए करती है। इनमें उच्च पदस्थ नारियों की संख्या नगण्य है। आज के व्यापक आंदोलन की तीव्रता से उनमें कुछ असंतोष जाग रहा है और धीरे-धीरे उनकी विलासिता क्रियाशीलता में परिवर्तित हो रही है।

उच्च मध्यवर्ग उच्च वर्ग से दूर होकर भी उनके समीप होने का दावा

करता है। उनमें निराशा बढती जा रही है। इस वर्ग की बहुत-सी नारियाँ नौकरी करती है। इसी प्रकार निम्न मध्य वर्ग भी सर्वहारा वर्ग के समीप होकर भी उनसे दूर होने का दावा करता है। संख्या की दृष्टि से मध्य वर्ग समाज का मुख्य वर्ग कहा जा सकता है। इसी वर्ग की अधिकतर महिलाएँ नौकरी करती हैं। फलत:, समाज का बनना-बिगडना इसी वर्ग के हाथ में रहता है। परम्परागत अस्तित्व को त्याग कर, सबल और स्वतंत्र व्यक्तित्व पोषण का मध्य वर्गीय नारियों का प्रयास अधूरा लगता है।

निम्न वर्ग की नारी को अभावग्रस्त और असुविधाओं से भरे जीवन से बाहर देखने की फुरसत ही नहीं है।

आज नारी अपनी आर्थिक जिम्मेदारी उठाकर कुछ हिस्से में पारिवारिक समस्या सुलझा रही है। अर्थ का अभाव और स्वावलंबन की इच्छा ने शिक्षित नारी को परिवार के संकीर्ण दायरे से बाहर खींचा है। अन्य देशों में काम का वर्गीकरण नहीं किया जाता, परंतु हमारे देश में चक्की चलाना, बच्चों की देखभाल करना, खाना पकाना, कपडे धोना आदि कार्य निम्न श्रेणी के माने जाते हैं। आज शहरों में कसीदा, सिलाई, चूडियाँ बनाना, पर्स बनाना, सौंदर्य प्रसाधन की दूकानें चलाना आदि कार्य महिलाएँ कर रही हैं। कारखानों के अधिनियम के अनुसार स्त्री भी नौ घण्टे काम कर सकती है।

प्रजोत्पादन की इच्छा, प्रेम भावना, काम वासना आदि नैसर्गिक भावनाओंकी तृप्ति ही विवाह का उद्देश्य होता है। अलग-अलग परंपराओं के बावजूद भी सभी देशों में विवाह प्रथा प्रचलित है। निरोगी, स्वास्थ्यपूर्ण समाज के लिए तथा अनैतिकता रोकने के लिए विवाह संस्था अत्यावश्यक मानी गई है।

आजकल विवाह - समस्या सामाजिक न रह कर वैयक्तिक बन गई है। आज नारी अपने सुख-दु:ख का विचार खुद करने के लिए समर्थ हो रही है। फिर

मी लकीर का फकीर बना अंधा समाज नारी को प्रगतिपथ पर स्वतंत्रता से आगे बढने नहीं देता। आज नैतिक मान दंड परिवर्तित हो रहे हैं, तो विवाह संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन अपरिहार्य है। आज भी बहुत परिवार ऐसे है, जो असंतुष्ट वैवाहिक जीवन जी रहे हैं। नौकरी करनेवाली नारियों में अधिकतर नारियों का प्रेम विवाह होता है। शिक्षित स्त्री अपनी पसंद से पति का चुनाव करती है। ज्यादातर नारियाँ अपने ही धर्म के पुरुष के साथ शादी करती हैं। विवाह में वर से वधू उम्रमें छोटी होती है। कहीं-कहीं पत्नी पति से बडी होती है। अधिकतर नारियाँ स्वतंत्र कुटुंब पध्दति को अपनाती है। बहुत कम नारियाँ संयुक्त परिवार में रहती हैं। `मजबूरी`, गुलामी का दूसरा नाम है और मजबूरी से किए गए विवाह समस्याओं को जन्म देते हैं। पति-पत्नी में उचित समन्वय की सूझ-बूझ रख कर किए गए विवाह सफल होते हैं। आज समाज में जीवनसाथी के योग्य चुनाव के लिए 'शुभं करोति परिचय केन्द्र' जैसे नए - नए उपक्रम जारी किए जा रहे हैं।

वर्तमान युग में नारी जीवन में आमूलाग्र परिवर्तन दिखाई दे रहा है। परिवार में केवल पुरुष की आमदनी पर अवलंबित रहना दिन-प्रति-दिन मुश्किल होता जा रहा है, अत: बहुतसी नारियाँ नौकरी कर अपने छोटे परिवारों में सहयोग दे रही है। घर और बाहर दोनों ओर योग्य मेल रखना नौकरी करने-वाली नारी के लिए मुश्किल हो जाता है। वे चाहकर भी पति, बच्चे और घर के साथ योग्य न्याय नहीं दे सकती। नौकरी यदि पूरे दिन की और दूरीपर हो, तो छोटे बच्चे समस्या बनकर सामने आते हैं। विभक्त कुटुंब पध्दति के कारण घरमें दादी, चाची आदि की कमी महसूस होती है और न चाह कर भी बच्चों को `आया` के हवाले छोडना पडता है। `आया` के जरिए बच्चों पर अच्छे ही संस्कार होंगे, यह कहना मुश्किल होगा। विवाह के ७-८ वर्षों बाद नौकरी करना आसान होता है, क्योंकि तब तक बच्चे बडे होकर स्कूल में जाने लगते हैं और नारी अपना समय एवं शिक्षा का सही उपयोग कर सकती है। नौकरी के लिए नारी को कभी-कभी अपने पत्नीत्व और मातृत्व की कुर्बानी करनी पडती है।

नौकरी के साथ नारी के आवास की और आवागमन की समस्या उपस्थित होती है। बच्चों के लिए बाल भवन की सुविधा न होना, रात में देर तक काम, असाध्य यात्रा, एकांत न मिलना, काम करने की जगह का अच्छी न होना आदि बातों से नारी में नैराश्य उत्पन्न होता है। नौकरी करनेवाली नारी को पुरुष संदेहपूर्ण दृष्टि से देखता है। शक के कारण स्त्री-पुरुष में अलगाव और संघर्ष निर्माण होता है। नौकरी से प्राप्त आमदनी पर उस स्त्री का पूर्ण अधिकार होता है, फिर भी वह उसका विनियोग पूर्ण रुप से अपनी इच्छा के अनुसार नहीं कर सकती और मानसिक असंतुष्टि के कारण संघर्ष छिड जाता है। नारी सामाजिक कार्यों में, नौकरी में मन पर किसी तरह का बोझ बिना लिए स्वेच्छा के साथ कार्य कर सके तो उसका दर्जा ऊँचा उठ सकता है।

संविधान के अनुसार आज स्त्री को भी पुरुष के समान हर तरहकी शिक्षा-प्रशिक्षा प्राप्त करने का और हर तरह की नौकरी करने का अधिकार प्राप्त हुआ है। खासकर विदेशी 'फार्मास्यूटिकल्स कंपनियों' में अविवाहित स्त्रियों को ही नौकरी दी जाती है, जिससे उन्हें प्रसूति आदि के लिए छुट्टी न देनी पडे। अखबारों में इसके विरुध्द आवाज उठाई गई, तो इस नियम में परिवर्तन किया गया, परंतु खाने के दाँत और दिखाने के दाँत और ही रहे। इसके लिए नारी संघटनाओं को सजग रहना आवश्यक है। मिलों जैसे नियंत्रित व्यवसायों में बच्चों के लिए शिशु विहार, पालना घर, विधवाओं को मदद, मुफ्त में दवाइयाँ, स्कूल जाते बच्चों को ड्रेस, किताबें आदि मदद मिलती है, परंतु हर एक नौकरी में ऐसी सहूलियत नहीं मिलती, जो कि आवश्यक है। राष्ट्रीय संपत्ति का विनियोग सही तरीके से कर स्त्रियों में जागरुकता और क्रियाशीलता बढाने की आवश्यकता है।

नौकरी करनेवाली स्त्री को बेफिक्र, मगरुर कहा जाता है, जिससे उसे मर्मांतक पीडा होती है। वास्तव में नारी में पुरुष की अपेक्षा समझौते

की प्रवृत्ति अधिक होती है। आज नारी नौकरी कर समाज तथा परिवार के लिए उन्नत्ति के नए द्वार खोल रही है। नारी में स्थित त्याग, प्रेम, सहनशीलता, मानवता, सहिष्णुता, कर्तव्यपरायणता, कला-नैपुण्य आदि गुणों का विकास समाज एवं पुरुष के सच्चे सहयोग से ही संभव है।

आज साहित्य के जरिए भी नौकरी करनेवाली स्त्री का अत्यंत घृणास्पद चित्र समाज के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। परंतु नए साहित्यकारों ने नारी को इस कीचड से उबारने की कोशिश की है। प्रेमचंद, यशपाल, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी आदि नए पुराने साहित्यकारों द्वारा पक्की नींव तो डाली गई है, अवश्य, परंतु अभीतक उस नींव पर मजबूत इमारत खडी नहीं हो सकी है।

२० वीं शती के उत्तरार्ध में भी नर-नारी समानता की माँग बढती जा रही है। भारतीय संविधान के अनुसार कानून के सामने नर-नारी समान है और दोनों को भी समान संरक्षण मिल सकता है। परंतु यथार्थ उसके विपरीत ही है। बहुत कम नारियाँ अपने हक्कों के मुताबिक समानता पाती हैं। आर्थिक परतंत्रता और अशिक्षा ही इसका प्रमुख कारण है। आज भी नारी का सामाजिक और आर्थिक स्थान दुय्यम ही रहा है। आमतौर पर नारियों को अनियमित उद्योग धंधों में काम मिलता है - जैसे इमारतों का बाँधकाम, घरकाम, बीडी, ईंट तैयार करना या काजू सफाई आदि, जिसमें वेतन कम, काम की निश्चिति नहीं - और संरक्षण देने वाले कानून भी नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कानून में दिए हुए हक्क अलग बात है और वास्तव में कुछ अलग ही हो रहा है। भारतीय समाज की इमारत पुरुष प्रधान संस्कृति की नीव पर खडी होने से पढाई में भी लडके को लडकी से ज्यादा सहूलियत दी जाती है। चुनाव में चुनी गई नारियों की संख्या भी अत्यल्प है। रशिया, स्वीडन और इजरायल की बात छोड दें, तो भारत में संसद सदस्या नारियों की संख्या अन्य देशों की तुलना में ज्यादा है यह बात संतोष जनक है।

निष्कर्ष --

जीवन परिवर्तनशील है और परिवर्तन विश्व की आत्मा है। अत: व्यक्ति, समाज, राष्ट्र , युग, सृष्टि और साहित्य आदि सभी में निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रहती है। यही कारण है, कि प्राचीन और आधुनिक साहित्य में नारी संबंधी मान्यताओं में बहुत अंतर दिखाई देता है। साहित्यकारों ने नारी को अपने-अपने युग के संदर्भ में नवीन दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। नारी के अंतस् की माया-ममता, मार्दव, स्नेह, मातृत्व आदि भावनाएँ सभी कालों के लिए अपरिवर्तित है, अवश्य, लेकिन परिवर्तित हुई है केवल उनकी जीवन दृष्टि, वैचारिक पध्दति, जीवन लक्ष्य। यह परिवर्तन हर युग की धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल हुआ है। नवीनता को प्राप्त करने के लिए उसे बहुत कुछ पुराना त्यागना पडा है।

कहा जाता है, कि इतिहास खुद को दुहराता है। वहीं घटनाएँ, वहीं परिस्थितियाँ नाम और रुप बदलकर बार-बार आती रहती है। प्राचीन काल में लोगों में नारी के प्रति आदर की भावना थी। उसका मान-सम्मान होता था। बाद में पुरुष को स्वामित्व प्राप्त हुआ, स्त्री का महत्व कम हुआ और आज फिरसे नारी अपना समानता का हक्क प्राप्त करने के लिए संघर्षरत हो रही है। साहित्यकारों ने भी कभी नारी को देवी और माता के रुप में पूजा की और कभी उसे विलासिनी के रुप में चित्रित कर उसके शरीर के साथ खिलवाड भी किया। / कभी उसे श्रेष्ठ मान कर उसके साथ अत्यधिक अनुराग दिखाया, तो कभी उसे हीन मानकर अत्यंतिक विरक्ति दिखाई। नारी को कभी प्रवृत्तिमार्गी मानकर चित्रित किया , तो कभी निवृत्तिमार्गी मानकर भी चित्रित किया गया।

प्राचीन काल में समाज तथा समाज के अग्रणी जिस प्रकार नारी को चाहते थे उसी प्रकार प्राचीन काल के साहित्य में नारी को चित्रित किया गया/।

प्राचीन काल के साहित्य में स्वयं नारी की आवाज कहीं भी नहीं सुनाई देती है। परंतु वर्तमान साहित्य में नारी की इच्छा-आकांक्षाओं, मनोभंगिमाओं, समस्याओं का मनोवैज्ञानिक ढंग से सूक्ष्मता के साथ चित्रण होने लगा है। आधुनिक साहित्य में नारी को अभिव्यक्ति यथार्थ के धरातलपर विपुल मात्रा में हो रही है। कुछ साहित्यकारों ने नारी को शय्या सजाने की वस्तु मान कर चित्रित किया है, तो ऐसे साहित्यकार भी कम नहीं है, जिन्होंने नारी को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि नर नारी के बीच दोनों ओर से सुयोग्य समन्वय और समझौते की भावना सेही दाम्पत्य जीवन सच्चे अर्थों में सार्थ बन जाएगा।

कहा जाता है कि नारी ईश्वर की शक्ति है, जिसके बिना पुरुष अपूर्ण रहता है। किसी भी राष्ट्र का निर्माण अकेले पुरुष पर नहीं हो सकता। राष्ट्र की स्त्रियाँ पत्नी रुप में अपने पतियों को साहस प्रदान करती है तथा मातृरुप में भावी संतति को इस प्रकार शिक्षित करती है, कि वह स्वतंत्रता, आत्मसम्मान और आचरण की उच्चता के लिए किए गए हमारे प्रयत्नों का अनुगमन कर सके। कोई भी पक्षी एक पंख से नहीं उड सकता, इसी प्रकार कोई भी राष्ट्र स्त्री और पुरुष दोनों में से केवल किसी एक वर्ग के द्वारा उन्नत नहीं हो सकता। हम अभिन्न नहीं हैं, हममें भिन्नताएँ है, किन्तु ऐसी भिन्नताओं में, जो एक दूसरे की विरोधिनी न होकर परस्पर पूरक का काम करती है, मानव की पूर्णता निहित है। देवी के बिना देव नहीं, उसी प्रकार स्थूल तत्व के बिना चेतनातत्व प्राप्त नहीं हो सकता, चेतना तत्व स्थूल चेतना को देता है तथा स्थूल चेतना को साकारता। इतना ही नहीं, हिंदु दृष्टिकोण से ईश्वर की कर्तृत्व शक्ति स्त्री-स्वरुपा है। यही कारण है कि प्रत्येक दु:ख एवं विपत्ति के समय समाज के समस्त देवता आदर्श व्यक्ति त्राण करने के लिए शक्ति को पुकारते है और जहाँ पुरुष वर्ग असफल सिध्द होता है, वहाँ स्त्री वर्ग विजय प्राप्त करता है और असत् को दूर भगा कर सत् की पुन:प्रतिष्ठा करता है।

जगत् में ईश्वर की इस शक्ति का प्रतीक नारी है, जिसका पावनतम और मधुरतम नाम 'माँ' है।"[१] यही कारण है कि भगवान मनु ने मनुस्मृति में स्त्रियों के लिए मान-सम्मान, सत्कार जैसे साधारण शब्दों का प्रयोग न कर पूजा शब्द का प्रयोग किया है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।।"[२]

अर्थात् जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती है, वहीं देवता रमते हैं और जहाँ स्त्रिया दु:खी रहती हैं, वहाँ महालक्ष्मी आदि देवता नहीं रमते, वह घर, घर नहीं, स्मशान है। यहाँ पूजा का मतलब नारी को सम्मान की दृष्टि से देखना, उसे पुरुष के समान सभी हक्क प्रदान करना, उसके शील और चारित्र्य की रक्षा करना आदि है।

इतिहास इसका साक्षी है, कि किसी भी देश में जब कभी नारी का महत्त्व बढता है, उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, उसे पुरुष के समान अधिकार प्रदान किए जाते हैं, तब वह देश प्रगति की ओर अग्रसर दिखाई देता है और जब नारी को हेय समझा जाता है, उसे परम्परागत रुढियों की शृंखलाओं में जकडकर रखा जाता है, उसके शील चारित्र्य की रक्षा नहीं की जाती, तब वह देश स्मशानवत् बना है, पराधीन बना है। प्राचीन काल में हमारे देश में नारी को समाज में बहुत महत्त्व का स्थान था, पुरुष के समान सभी अधिकार उसे मिले थे, वह अध्ययन-अध्यापन का कार्य और जीवन साथी का चुनाव स्वतंत्रता से कर सकती थी। इसी लिए हमारा देश प्रगति की चोटी पर खडा था। परन्तु मध्यकाल तक आते-आते नारी को हेय समझा जाने लगा। उसे चार दीवारों में, रुढियों की शृंखलाओं से जकडकर बन्दिनी बनाया। उसके

१ कल्याण - जून १९८८ - गीता प्रेस गोरखपुर - पृ.६९१

२ मनुस्मृति - ३.५६

सभी अधिकार छीन लिए गए। उसके शील और चारित्र्य की रक्षा न हो सकी, अतः हमारा देश पराधीन बन गया। आधुनिक काल तक आते-आते नारी में फिर से चेतना जाग्रत होने लगी। उसे पुरुष के समान सभी अधिकार प्रदान किए जाने लगे। समाज में उसका महत्त्व बढने लगा। आज वह पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर हर क्षेत्र में आगे बढ रही है, अतः हमारा देश सम्भवतः प्रगतिपथ की आशा की ओर अग्रसर होता हुआ दिखाई दे रहा है।

••